Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 7 | JULY 2019

समकालीन हिन्दी कविता और समाज
(CONTEMPORARY HINDI POETRY AND SOCIETY)

DR. SANJEEV KUMAR [1]
[1] ASSISTANT PROF IN HINDI, GOVT. COLLEGE BEETAN, DISTT UNA (HIMACHAL PRADESH)- 176601

ABSTRACT:

'समकालीन' यानि एक ही समय का अथवा समसामयिक और कविता अर्थात् हृदय के भावों की अभिव्यक्ति। 'नई कविता' युग से अनेक काव्यान्दोलन नारे रूप के में आए और समाप्त हो गए, जैसे - अकविता, विद्रोही कविता, समानांतर कविता, नूतन कविता, अस्वीकृत कविता आदि। नाम चाहे जो भी दिया जाए, कविता अपने मूल में तब तक कविता है जब तक वह जीवन और परिवेश को संवेदना के धरातल पर अनुभव करके शिल्पगत सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त करती है। कविता जीवन की व्याख्या है अतः वह जिन्दगी के फलसफे को अपने भीतर समेटे रहती है। समकालीन कविता अपने युग एवं परिवेश से सम्पृक्त है। इस कविता में हम अपने वर्तमान को देख सकते हैं। हमारी आशा-निराशा, आकांक्षा-अपेक्षा, राग-विराग, हर्ष-विषाद सब उसमें समाए हुए हैं। इस कविता का स्वर व्यंग्य और आक्रोश से भरा हुआ है। समकालीन कविता में चित्रित मानव जिन तनावों, विसंगतियों एवं कुण्ठाओं को लिए हुए जी रहा है, वे पूर्णतः यथार्थ हैं। समकालीन कविता उस मोहभंग को दर्शाती है जो स्वतंत्रता के बाद लोगों के हृदय में उत्पन्न हुआ था । नेताओं के वायदे खोखले साबित हुए। सबके घर में रोशनी और खुशहाली का वायदा किया गया था । दुष्यंत कुमार लिखते हैं -

कहां तो तय था चिरागं हरेक घर के लिए।
कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।।

KEYWORDS:

समकालीन, हिन्दी कविता, समाज

समकालीन हिन्दी कविता का विकास एक बहती धारा के समान है। उसके प्रवृत्तिगत अध्ययन से केवल उसकी एक विकास परम्परा का पता चलता है। अलग-अलग कवियों की कविताओं का अध्ययन करते हुए उन कवियों के अपने संस्कारों, उनकी विभिन्न जीवन दृष्टियों, उनकी काव्य विषयक धारणाओं तथा समकालीन वास्तविकता के विविध पहलुओं की जानकारी होती है। हम देखते हैं कि किस प्रकार एक ही समय में लिखने वाले कवियों कि काव्य चिन्ताएँ और काव्य-संवेदनाएँ एक दूसरे से अलग -अलग रही हैं।

'तीसरा सप्तक' (1959) के प्रकाशन के साथ नई कविता अपने भावबोध, भाषा - व्यवहार को लेकर रूढ़ हो गई और उसमें बदलते युगीन यथार्थ को पकड़ने की क्षमताएँ पूर्णतः चुक गई। इसी अर्थ में नई कविता ने प्रासंगिकता खो दी और व्यतीत हो गई। तत्कालीन जीवन में गति और वेग के बहाव में मानवमूल्य, आस्था, विश्वास, उत्साह, मानवता आदि शब्द व्यर्थ हो गए। इनके स्थान पर अवमूल्यन, अनास्था, अविश्वास, हतोत्साह, अमानवीयता आदि ने अधिकार ग्रहण किया । इस तीखे वेग की लहरें ग्रामीण जीवन को भी छू रहीं थीं, किन्तु उतने तेज रूप में नहीं। फिर भी राजनीतिक परिदृश्य अधिक घिनौना, छली और नंगा हो गया। भारतीय जीवन में कहीं भी संतुलन और संयोजन नहीं रह गया था ।

राजनीति और विरोध की कविता - सुदामा पाण्डे 'धूमिल' का एकमात्र कविता संकलन है - 'संसद से सड़क तक' । इस संकलन में 'संसद से सड़क तक' शीर्षक कोई कविता नहीं है और न ही धूमिल ने इस शीर्षक से कोई कविता लिखी ही है। फिर भी उनके संकलन के लिए यह नाम अत्यंत उपयुक्त और अर्थवान है। इस संकलन की लगभग सभी कविताएँ किसी -न-किसी स्तर पर संसद या सड़क से जुड़ी हुई हैं। 'संसद' अर्थात् भारतीय राजनीति और 'सड़क' अर्थात् भारतीय मामूली आदमी। धूमिल की कविता सच्चे अर्थों में सड़क और संसद अर्थात् जनता और जनतंत्र की कविता है। धूमिल व्यवस्था, व्यवस्था में जीने वाले आदमियों तथा उस व्यवस्था पर पलने वाले शोषक - तीनों को अपनी कविता में समेटते हैं। कवि 'रोटी और संसद' में लिखते हैं -

'एक आदमी रोटी बेलता है,
एक आदमी रोटी खाता है,
एक तीसरा आदमी भी है,
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूं --
'यह तीसरा आदमी कौन है ?'
मेरे देश की संसद मौन है।'

उपेक्षा और संदर्भहीन होने का दर्द : युवा पीढ़ी की उपेक्षा का दर्द विशेषरूप से रमेश गौड़ की कविताओं का विषय रहा है, और इस प्रकार वह स्वयं के, अपनी पीढ़ी के दर्द को स्वर देते हैं, जिससे मिथकों को नए, युगीन अर्थ संदर्भ भी उपलब्ध होते हैं। संदर्भहीन मैं, अभिमन्यु, बेमानी व्यक्तित्व आदि कविताओं में ऐसे ही विचार व्यक्त हैं। जैसे -

अब तुम
मेरे साथ नत्थी कर दो
कोई भी मनचाहा अर्थ
माथे पर चिपका दो
किसी भी नाम का साइनबोर्ड
कोई भी नासूर
मुंह नहीं खोलेगा।[1]

सार्थक राजनीतिक समझ का विकास : सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कविता में राजनीतिक समझ देश की राजनीतिक चेतना के समानांतर विकसित हुई । रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में, "यह सही और सच्ची, सार्थक और प्रतिबद्ध समझ सातवें दशक के अन्त में आई है और इस बिंदु पर युवा कवियों ने आत्मनिर्वासनबोध छोड़कर अनिवार्यताबोध अपनाया हैः 'साहित्य की राजनीति के पाखंड पर्व को खंड-खंड करके देश में तरक्की-राम को पटकथा दिखाते हुए राजनैतिक कविता को ही आज की सही और सच्ची कविता मान लिया है"[2] विश्वक्षितिज पर छाई पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों -नीतियों के शिकार हर देश को, इकाई को व्यापारिक बुद्धि कैसे अपने हित में खंडित - विभाजित और तबाह करती है, राजकमल चौधरी 'मुक्तिप्रसंग' में लिखते हैं -

कवियों की शब्दावली में लिखे गए शान्ति के संयुक्त वक्तव्य
हाईड्रोजन बम परीक्षण में पंख फड़फड़ाते हुए
कबूतरों की मौत मर जाते हैं
और बाकी शहरों में राजनीतिक वेश्याओं ने पीला मटमैला
अंधेरा फैला रखा है
अपनी देह को उजागर करने के लिए
नई दिल्ली में, ढ़ाका और कराची में अब कोई फर्क नहीं है।[3]

क्रांति चेतना और धारदार वैचारिक मुहावरे : आठवें दशक तक आते-आते देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति पहले से बदतर हो गई थी। अंधाधुंध बढ़ती मंहगाई, उपभोक्ता वस्तुओं के बढ़ते दाम आर्थिक स्थिति का सिर्फ एक पहलू बताते हैं। दूसरा पहलू वह है जो गांव-देहात में निर्धनता और फटेहाली का जीवित रूप सामने लाता है।

शिक्षित युवावर्ग में बेकारी-बेहाली से एक गहरी बेचैनी व्याप्त हो रही थी जो अस्तित्व चिंता के साथ जुड़ गई। इससे सामाजिक परिवर्तनों की अनिवार्यता ने जन्म लिया । विश्वक्षितिज पर युवा आक्रोश और आंदोलनों के ज्वार के समानांतर भारतीय युवा भी विद्रोह अस्वीकार के साथ तोड़-फोड़, आगजनी तथा सशस्त्र क्रांति के नक्सल स्वरूपों से जुड़ गए। अतः युवा लेखक क्रांतिचिंतन के साथ जुड़ा । युवा कवियों ने उक्त हिंसक -क्रूर परिवेश की पहचान को रचनाओं में स्पष्ट और तीखे चित्रणों द्वारा संवेदना धरातल प्रदान किया । इस तस्वीर के कई-कई पक्ष समकालीन कविता में उद्घाटित हुए हैं। समकालीन हिन्दी कविता में इन बढ़े हुए, विचार और सामाजिक पक्षधरता प्रतिबद्धता के आग्रहों को मानवीय हिंसा और गुलामी के विरुद्ध उत्तरोत्तर तीव्र होते साफ देखा जा सकता है।

समकालीन हिन्दी कविता में यों तो, 'हालात' का 'बयान' स्वातंत्र्योत्तर काल में कमोबेश किया जाता रहा, किन्तु आठवें दशक की समकालीन हिन्दी कविता के पूर्वार्द्ध का काव्य तो इस संदर्भ का एक विशिष्ट ऐतिहासिक दस्तावेज़ बन गया है। रघुवीर सहाय 'हंसो हंसो जल्दी हंसो' में लिखते हैं -

"तुमने मार ड़ाले लोग
क्योंकि वे हंसे थे
क्योंकि वे सुस्त पड़े थे
क्योंकि वे बहुत सारे लोग थे"[4]

अन्याय सहकर जीवित रहने वालों की अपेक्षा चप्पा रोटी खाकर मर जाने वाले कुत्ते के पिल्ले को कवि कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह अच्छा बता रहे हैं और चप्पा रोटी न पाने पर भी जीवित रहना - जलालत से बंधे रहना और ऐसी कायर जिन्दगी के चक्कर में फंसे रहना है जिससे कि वास्तविक क्रांति अधर में लटकी हुई है। कवि 'लेखन' में लिखते हैं -

"सड़क पर चप्पा खाकर मर जाने वाले पिल्ले

मुझे आदमी से ज्यादा इनकलाबी लगते हैं
माना कि उनमें से किसी ने ताजमहल खड़ा नहीं किया
न ही किसी को 'पीसा टावर' या 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' को
खड़ा करने का गौरव प्राप्त है मगर उनके हिसाब में कम-से-कम
कोई क्यूबा
या वियतनाम तो नहीं है।"[5]

निर्णय : समकालीन कविता वैचारिक उद्देश्य द्वन्द्व, तनाव की स्थितियों व रचाव की अनिवार्यता को पूरा करने के साथ ही कवि पक्ष-विपक्ष को लेकर अपनी सम्मति, निष्कर्ष या निर्णय भी प्रस्तुत करती है। यह निर्णय पहले से बना-बनाया न होकर कथ्य में से उद्भूत होता है। निर्णय विचार का तत्व बनकर आता है, आरोपण बनकर नहीं। समकालीन कविताओं में ऐसे अनेक उद्धरण देखने को मिलते हैं, जहां निर्णय की पहचान अत्यंत मुखर और स्पष्ट है। नंद चतुर्वेदी 'कविता-8' में लिखते हैं -

'जवान और बीमार लड़के की मृत्यु सज्जनों !
और करीब आ गयी है, लोग अब यहां बैठकर
रोयेंगे नहीं -
फिर वे क्या करेंगे :-
यह - किस रंग का फूल मैं अपने कोट में लगाऊं
जैसा सांस्कृतिक सवाल नहीं है
और न मुझे यह कहने की जरुरत है कि
वे फिर क्या करेंगे ?
मैं तो केवल यही कहने के लिए बार-बार आता हूं कि
अब बहुत थोड़ा समय है
कुछ नहीं के बराबर समय है
और मैं उन लोगों के साथ हूं
जो बीमार और मृत लड़के की मृत्यु पर रोयेंगे नहीं
बल्कि कुछ करेंगे।[6]'

कविता में निम्नमध्यवर्गीय जीवन का बयान : नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ मध्यवर्ग के निचले स्तर अर्थात् निम्नमध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करती हैं। उनकी कविता के वे अंश विशेष रूप से रेखांकित करने योग्य हैं जिनमें वे मामूली, उपेक्षित, असहाय जिंदगी का चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'देखना ओ गंगा मइया' शीर्षक कविता में वे मल्लाहों के नंग-धड़ंग छोकरों का चित्रण करते हैं जो उथली - छिछलि धार में पैसे खोज रहे हैं। वे उन पैसों से बीड़ी पियेंगे। आम चूसेंगे और देह में साबुन की सुगंधित टिकिया मलेंगे। 'रवि ठाकुर' शीर्षक कविता में नागार्जुन उनके वैभवपूर्ण आभिजात्य से अपनी अभावग्रस्त जिंदगी की तुलना करते हुए लिखते हैं -

पैदा हुआ था मैं
दीन हीन अपठित किसी कृषक कुल में
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व
रूद्ध है सीमित है -
आटा-दाल-नमक-लकड़ी के जुगाड़ में !
पत्नी और पुत्र में !
सेठ के हुकुम में !
कलम ही मेरा हल है कुदाल है !!
बहुत बुरा हाल है !!

नागार्जुन ने अपनी कविता में इसी अभावग्रस्त जिंदगी का चित्रण किया है। भूख की पीड़ा उनकी कविता में बार-बार व्यक्त हुई है। 'प्रेत का बयान' कविता में एक भूख से मरने वाले अध्यापक का बयान है। इसी प्रकार से 'विजयी के वंशधर' कविता में उन बाबुओं -मालिकानों पर व्यंग्य किया गया है जो छप्पन प्रकार के पकवान उड़ाते हैं। 'तो फिर क्या हुआ' में उन बुद्धिजीवियों पर नागार्जुन ने व्यंग्य किया है जिन्हें केवल अपनी कुर्सी और अपने वेतन से मतलब होता है। 'कवि' कविता में उन कवियों पर व्यंग्य किया गया है जो रेड़ियो के लिए गीत लिखते हैं और जिनका गला मीठा है। जो इलियट को पढ़ते हैं और बाकी सबको इडियट समझते हैं। कविता के प्रचलित रूप को तोड़कर उसे एक नया कलेवर दे देने का अद्भुत कौशल नागार्जुन की कविताओं में देखने को मिलता है। 'अकाल और उसके बाद' कविता में वास्तविकता की झलक कुछ इस से हम देखते हैं -

'कई दिनों तक चुल्हा रोया , चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक जूल्हों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आंगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर - भर की आँखें कई दिनों के बाद
कोए ने खुजलायी पाँखें कई दिनों के बाद'

समकालीन कवियों ने स्वार्थी और कुर्सी प्रेमी नेताओं पर बेबाक टिप्पणीयाँ की हैं । ये नेता जनता को खिलौनासमझते हैं। दुष्यन्त कुमार लिखते हैं -

'जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी हम झुनझुने हैं।

आज का आदमी बौना है। जीवन एक निरूद्देश्य गोरखधंधा दिखाई पड़ता है,

दुष्यन्त कुमार लिखते हैं -

जिंदगी का कोई मकसद नहीं है।
एक भी कद आज आदमकद नहीं है ।।'

'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में समकालीन कवि रघुवीर सहाय लिखते हैं, "शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी जरूरत है : आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जो हम जनता में देखते हैं। यदि रचनाकार को रचना में ही अपनी लड़ाई लड़नी है तो उसके पास भाषा के अतिरिक्त और कोई हथियार नहीं है। यह उसके बूते की बात है कि वह भाषा का इस्तेमाल गोली की तरह करता है या पके हुए कटहल की तरह। रघुवीर सहाय की कविता सामाजिक संसार की कविता है। भीड़, संसद, चुनाव, मतदान, जुलूस, नारा, सड़क, बाजार आदि की बात करते हुए वे अपनी कविता को एक सामाजिक संदर्भ में रखते हैं। आज के मनुष्य के सही संदर्भ में।"

'समकालीन कविता' की एक प्रमुख विशेषता है 'लोक जीवन से उसका जुड़ाव'। समकालीन कविता में जीवन की निर्मम वास्तविकताओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस कविता का क्षेत्र हमारे आस-पास का परिवेश है। आज की कविता सहज, धारदार एवं प्रभावशाली है और वह आम आदमी की भाषा में कही गई है। इसकी शैली प्रहारक है, व्यंग्यात्मक है और साथ-साथ सार्थक भी है। 'समकालीन कविता' से अभिप्राय है - समय की गति के साथ यथासम्भव चलना । इस कविता ने यही किया है, स्वयं को समय के साथ बदला है। समकालीन कवि आम आदमी की स्थितियों, परिस्थितियों, परिवेश और मानसिकता को कविता में अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं। स्थितियों और परिस्थितियों के पहलुओं को समझने के लिए उन सभी अहसासों को संजोना -परखना होगा, जो घटनात्मक या अघटनात्मक तरीके से खौफनाक खबरों को रचने के आयाम खोलते रहे हैं।

REFERENCES

1. रमेश गौड़ : प्रारम्भ, पृष्ठ.188 ।
2. रमेश कुंतल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, पृष्ठ. 464 ।
3. राजकमल चौधरी : मुक्तिप्रसंग, पृष्ठ.21।
4. रघुवीर सहाय : हंसो हंसो जल्दी हंसो, पृष्ठ.01
5. कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंहः लेखन, पृष्ठ.25 ।
6. नन्द चतुर्वेदी : कविता-8, पृष्ठ 16 ।

परिशिष्ट (मूल ग्रंथ सूची)

1. प्रगतिशील कविता के मील पत्थर, डॉ. रणजीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
2. आधुनिक हिन्दी कविता में विचार, बलदेव वंशी, मैकमिलन इ. प्र. लिमिटेड, नई दिल्ली ।
3. समकालीन हिन्दी कविता,विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
4. समकालीन कविता - चर्चित-परिचित चेहरे, डॉ. हुकमचन्द राजपाल, महरौली, नई दिल्ली ।

शोधकर्ता :-
डॉ संजीव कुमार, सहायक प्रोफेसर हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय बीटन,
जिला -ऊना (हिमाचल प्रदेश)
दिनांक : 21 अक्तूबर 2017